सफ़र से पूर्व



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के आर्थिक
सहयोग से प्रकाशित ।

अरुण प्रकाशन, नई दिल्ली-24

सफ़र के फूल

हैमेन्द्र-चण्डालिया

प्रकाशक : अरुण प्रकाशन
ए-47, अमर कालोनी, लाजपतनगर
नई दिल्ली-110024

आवरण : श्रीनिवासन अय्यर

मूल्य : 45.00 रुपये मात्र

प्रथम संस्करण : 1991

मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

SAFAR SE PURV by Hemendra Chandaliya Rs. 45.00

समर्पण

शहीद क्रांतिकारी कवि
अवतार सिंह पाश को
जिन्होंने लिखा

सबसे खतरनाक होता है
मुर्दा शांति से भर जाना
न होना तड़प का सब सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर जाना
सबसे खतरनाक होता है
हमारे सपनो का मर जाना...

('बीच का रास्ता नही होता' से)

आभार

ये कविताएं सृजन के सचेतन प्रयास और अभ्यास से पूर्व की कविताएं हैं। पहली बार पुस्तक रूप में प्रकाशित इन कविताओं को लेकर साहित्य या कविता पर कोई सामान्यीकृत व्यापक टिप्पणी करना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि अभी मेरी समझ में साधना का प्रथम चरण प्रारम्भ ही हुआ है।

यह अवसर अपने प्रेरणा स्रोतों को याद करने का है जिनके प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रोत्साहन और सहयोग से कविता के सृजन एवं प्रकाशन का कार्य संभव हो पाया। अपने जन्मदाता पूज्य माता एवं पिता से ही प्रारम्भ करूं क्योंकि आज जिस रूप मे मैं स्वयं को पाता हूं वह उनके त्याग एवं पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है। परिवार के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त पाटी-बरतना. (स्लेट और कलम) हाथ मे देने वाले मेरे पहले अध्यापक नागर साहब, श्रीमती उमा शर्मा, श्रीमती सविता भट्ट और कविता में दीक्षित करने वाली श्रीमती दीक्षित आदि का स्मरण हो आता है। डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', डॉ० नवल किशोर तथा डॉ० हेमेन्द्र पानेरी तो वर्षों तक मुझे अपना विद्यार्थी मानते रहे जब कि मैं हिन्दी विभाग का विद्यार्थी था ही नहीं। श्रद्धेय भगवती लाल जी व्यास, डॉ० पूनम दैया तथा मित्रवर कुंदन माली का सहज स्नेह मेरी अमूल्य निधि है। गुरुवर व्यासजी ने इस पुस्तक की भूमिका भी लिखी है। उनके इस आशीर्वाद को मैं अपना सौभाग्य मानता हूं।

कविता लिखने के शैशवकाल में अपने आशीर्वाद से प्रोत्साहित करने के लिए स्वनामधन्य कविवर डॉ० हरिवंशराय बच्चन का स्मरण कर स्वय को कृतार्थ अनुभव करता हू तथा गर्व भी महसूस करता हूं कि मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त हो सका।

राजस्थान साहित्य अकादमी के संस्थापक अध्यक्ष एव राजस्थान विद्यापीठ (प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय) के वाइस चासलर मनीषी पं० जनार्दन राय नागर ने इस संकलन की रचनाओं को आशीर्वाद प्रदान किया है। मैं उनके इस अनुग्रह को अपनी उपलब्धि मानता हूं।

आज अपने अनेकानेक मित्रों को भी याद करने का अवसर है जिन्होने अपने साथ से मुझे सम्बल और प्रेरणा प्रदान की। जब कविता करना यो स्वीकार्य नही था उस समय मेरी कविताओं को संकलित कर सहेजा मेरे भाई सदृश मित्र पोलू बन्ना ने। कुलभूषण, अमित और गिरिराज मेरे नियमित श्रोता और पाठक रहे। अमित तो स्वय बहुत अच्छा लिख भी रहे हैं। अपने अनन्य मित्र भाई गोपाल शर्मा, अनिल पालीवाल 'प्रभंजन', श्री निवासन अय्यर, डॉ० गिरीशनाथ माथुर तथा जियाराम विश्नोई के ही अथक प्रयासो से ये कविताए इस रूप में आ पाई हैं। अय्यर साहब ने न सिर्फ इस पुस्तक का आवरण और कला पक्ष तैयार किया है बल्कि मेरे जीवन और व्यक्तित्व मे कला के प्रति जो थोड़ी बहुत दृष्टि एवं समझ है वह उन्हीं की देन है। आवरण शिल्पांकन में मदद की है साथी प्रमिला सिंघवी ने।

इस सकलन के द्वितीय भाग की गजलों को डॉ० अजरा 'नूर' ने बड़े ही सहज एव आत्मीय भाव से देखा है। उनके अमूल्य सुझावों से ही इनका रग निखरा है। यही नही बाद की गजलों में प्रयुक्त उपनाम 'हबीब' भी उन्होंने ही सुझाया है। मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

प्रकाशन का कार्य अपने आप में एक जटिल विषय है। इसे सुगम बनाने के लिए मैं प्रगतिशील लेखक एवं जुझारू सामाजिक कार्यकर्ता श्रीयुत सालेह मोहम्मद नायब का आभारी हूं जिनके सहयोग के बिना इसका प्रकाशन आसान नही हो पाता।

राजस्थान साहित्य अकादमी ने अपनी पाण्डुलिपि प्रकाशन योजना के अंतर्गत मेरी कविताओं को चयनित कर आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई उसके लिए अध्यक्ष डॉ० दयाकृष्ण विजय एवं सचिव डॉ० लक्ष्मीनारायण जी नन्दवाना के प्रति भी मैं आभारी हू। पुस्तक के समय पर प्रकाशन एवं सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए मैं अरुण प्रकाशन के श्री अरुण शर्मा का भी आभार व्यक्त करता हूं।

उदयपुर —हेमेन्द्र चण्डालिया

दिनाक : 1-1-91

इस तरह बहना चाहिए नदी को

नदी को उस तरह नही, इस तरह बहना चाहिए, पहाड़ को कमर झुकाकर नही, तनकर खडा होना चाहिए, चिड़िया को चहचहाने के अधिकार मिलने ही चाहिए, इन्सान और इन्सान को इस तरह रहना चाहिए, दुनिया ऐसी नही, वैसी होनी चाहिए'''ये मुद्दे'''और ऐसे ही हजारों-लाखो मुद्दे'''। नतीजा शायर या कवि के दिल की बेकली'''बेचैनी। नतीजा'''कविता'''गीत'''गज़ल।

श्री हेमेन्द्र चण्डालिया की कविताओं (गीतों और गजलों की भी) की किताब 'सफ़र से पूर्व' पढ़ते-पढते मुझे लगा कि हेमेन्द्र की यह बेकली, यह नाराजगी उनकी अकेले की नही बल्कि उनकी पूरी पीढी की नाराजगी है, उनके अपने समय की बेचैनी है।

यह सही है कि हमारे अपने वक्त में सम्बन्धो के समीकरण बदल गए हैं। सियासत खुदगर्जी का पर्याय बन गई है। आदमी और मेज-कुरसी या ईंट-पत्थर में फर्क करना दुश्वार होता जा रहा है। ऐसे नाजुक वक्त में भी कविता में बराबर मूल्यों के महत्त्व को दोहराया जाना, उनके बारे मे कवि का फिक्र और अफसोस जाहिर करना क्या इस बात का ऐलान नही है कि कविता एक जरूरी चीज है क्योंकि यह बार-बार हमें याद दिलाती है कि दुनिया कैसी होनी चाहिए।

सिर्फ कवि के कविता लिख देने से या हालात से नाइत्तफाकी जाहिर कर देने से चीजें सुधर नही जाएंगी और न इस तरह का वहम किसी कवि को पालना चाहिए कि उसकी कविता लोगों तक पहुंचते ही शोषण या दमन का चक्का जाम हो जाएगा। दरअसल जिन लोगो के मजबूत हाथ शोषण और दमन का चक्का थामे हुए हैं वे कविता से परहेज करते हैं, कविता को अपने आसपास तक फटकने नही देते। वे जानते हैं कि कविता उनके लिए जहर है।

हर युग में कविता के साथ इन हाथों का यही सलूक रहा है फिर भी कविता जिन्दा है, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

कविता का जिन्दा रहना इस बात का सबूत है कि कविता अपना काम कर रही है। प्रकृति का यह नियम है कि जो चीज उपयोग में नहीं आती वह स्वतः नष्ट हो जाती है। कविता का उपयोग हो रहा है कहीं-न-कहीं। इसीलिए वह मरी नहीं है। नित नये तेवर लिए हुए, अपने पंखों में सवालों और मुद्दों के पुलिन्दे बांधे हुए, नीले और खुले आकाश में असीम उड़ान के सपने लिए हुए कविता की चिड़िया सुबह की हर नई किरण के साथ नई उड़ान के लिए तत्पर है। एक निहत्थी चिड़िया'''कविता'''और अगर हेमेन्द्र की आंख से देखा जाए तो फकत चोंच का हथियार लिए हुए इस दुनिया-जहान के जाल-जंजाल को काटने के लिए एक दम तैयार चिड़िया-कविता।

चोंच का हथियार'''शब्द का वार। हां, यही शब्द तो है कविता का हथियार। शब्द अजर-अमर शब्द। शब्द ब्रह्म।

शब्द की ताकत मामूली नहीं होती। किसी कवि दार्शनिक ने कहा था—"तुम मुझे सही शब्द और सही लहजा दो, मैं दुनिया बदल सकता हूं।"

बस, यह सही शब्द और सही लहजा ही कविता है। कितने लोगों को मिलते हैं सही शब्द और सही लहजा। भाग्यशाली हैं वे जिन्हें ये मिल जाते हैं। कम भाग्यशाली नहीं हैं वे भी जो इस दिशा में लगातार कोशिश कर रहे हैं।

मैं इसी दृष्टि से काव्य-यात्रा में शरीक होने वाले हर सहयात्री का स्वागत करता हूं कि शायद उसे वह सही शब्द'''सही लहजा मिल जाए। हेमेन्द्र का भी इस यात्रा में इसी रूप में स्वागत।

जैसा कि मैं ऊपर कह आया हूं उनमें हालात के प्रति एक गहरा असंतोष है, बदलाव के लिए एक छटपटाहट है जो इस संग्रह का जब पेड़ कटता है, दीया बुझने के बाद, सम्बन्ध, अपने आपसे, चिड़िया की कविता, किसलू, नदी अपने बारे में नहीं बोलती, परिवर्तन के बीच और पहाड़ के बारे में कोई कुछ नहीं कहता जैसी कविताओं में उजागर हुई है।

इस संकलन में गठन के हिसाब से तीन तरह की रचनाएं हैं—कविताएं, गीत और ग़ज़लें। मैं यहां उनकी कविताओं के बारे में अपनी बात को सीमित रखना ठीक समझता हूं क्योंकि इन कविताओं को मैं जिंदगी के ज्यादा करीब पाता हूं और शायद ज्यादा जीवन्त भी। जिन्दगी महज सांसों की धड़कन का नाम नहीं है बल्कि यह वह अनुभूति है जो इन्सान को इस अहसास को सराबोर करती है कि वह इन्सान है। चूंकि जिन्दगी बहुरंगी ही है इसलिए कविता का बहुरंगी होना मुझे नागवार नहीं गुजरता मगर

अनुभूति की गहराई अच्छी कविता की जरूरी शर्त है। हर कविता अनुभूति की एक सी गहराई लिए हुए हो या पढ़ने वाले को उसमें उतनी गहराई महसूस हो जितनी कवि ने अनुभव की है यह जरूरी नही है। फिर भी पढने वाले के पास कोई-न-कोई पैमाना जरूर होता है जिससे वह कवि की अनुभूत एव अभिव्यक्त गहराई को नाप लेता है और ज्यादातर मामलो मे, अगर पढने वाला पूर्वाग्रह ग्रस्त न हो, तो कवि और उसकी (पाठक की) गहराई के नाप का आक कहीं-न-नही मिल जाता है।

इस पैमाने पर सग्रह की अधिसंख्य कविताएं खरी उतरती हैं तथा मैं कवि श्री हेमेन्द्र मे सभावनाओं का एक निर्मल उजास पाता हू। यह उजास उत्तरोत्तर फैले जिससे उनकी कविता परिवेश के धुधलके के बावजूद चीजों को साफ-साफ पहचानने मे उनके पाठको की मदद कर सके, यही कामना है।

35, खारोल कॉलोनी, उदयपुर (राज०) —भगवतीलाल व्यास
10 जनवरी, 1991

अनुक्रम

ग़ज़लें

कविता के लिए

"कब तक चलता रहेगा
यो छिप-छिपकर
सबकी निगाहें चुराकर
पढ़ने के वहाने
गए रात, मुह अंधेरे मिलना ?"
यह सोचकर
चल दिया था मैं,
एक अनजान, अजनवी जगह की ओर
सोचा था—"वहां तुम होगी और मैं,
और अपना संसार।
शब्दों, बिम्बों, प्रतीकों का
अपना घर परिवार।"
पर यहां तुम कहां हो ?
तुम्हे नही भाया शायद
निर्वासन का यह जीवन,
छोड दिया है तुमने मुझे
अपने जिद्दी अकेलेपन के साथ, जो
पल भर भी चैन नही लेने देता—
अपनी मुट्ठियों में भर लेना चाहता है
असंख्य तारे !
जो उसे सिर्फ तुम्ही दे सकती हो।
मैं तुम्हें कहा खोजूं,
मेरी कविता ?

रोशनी का डर

जब भी
अंधेरो से बिछुड़ने की बात होती है.
मैं आखें भीच लेता हूं,
मुट्ठिया कस जाती हैं,
नस-नस मे चौंधिया देने वाली
रोशनी का भय समा जाता है।
मैं सोचता हू
मैं अधा हो जाऊंगा इस रोशनी से।
परन्तु, जब
कुछ क्षणों बाद आखें खोलता हू
सफेद दूधिया रोशनी मे
डूबा हुआ विश्व
एक दिवा स्वप्न-सा लगता है।
रोशनी का डर
मर जाता है—
एक कविता जन्म लेती है।

किसको अर्पित गीत करूं मैं ?

किसको अर्पित गीत करूं मैं,
किसको मन का मीत कहूं मैं ?
गीत मेरी वेदना है,
भावना है, कामना है
अश्रु का आश्रय बना जो,
यह हृदय की प्रेरणा है।
आसुओ को दिल में जगह दे,
किससे ऐसी प्रीत करू मैं ?
कौन मेरी वेदना ले,
अश्रु ले और प्रेरणा ले,
प्रेम और विश्वास देकर
शक्ति का सम्बल बनेगा !
धडकनों में मुझको सजा ले,
किसके मन का गीत बनूं मैं ?
किसको अर्पित गीत करूं मैं,
किसको मन का मीत कहूं मै ?

सृजन

मैं लिखना चाह रहा था
कल रात से।
एक बहुत सुन्दर कलम
हल्के नीले, गुलाबी
कागज का आकर्षक पैड लिये
टेबल-लैम्प की रोशनी मे
लिखने के लिए बैठा रहा मैं
बहुत देर—बिना लिखे एक भी शब्द।
कविता के लिए जो चाहिए था,
सभी था मेरे पास—बस
वही नही था
जिसके लिए होती कोई कविता।
कागज पर लिखा कोई भी शब्द
नहीं होता निरुद्देश्य,
प्रकट/अप्रकट, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष
होता है कोई श्रोता/पाठक
हर कविता के लिए, सर्जक के मन मे।
मैं इसलिए बैठा रहा
कल रात एक सुन्दर कलम और कागज लिये
बिना लिखे एक भी शब्द !

तीन कविताएं : तीन शताब्दियां

(1)

तुम्हारे कलमदान मे,
रखे कलम की टूटी निब देखकर
मुझे लगता है, तुम
बड़े अन्यायी हो।
किसी भी जुर्म की सजा
मौत नही होती,
कविता किसी की सौत नही होती।

(2)

फूल न लगा
आगन में,
वसन्त के पहले पखवाड़े मे
तुमने पौधे की नस्ल को कोसा था।
और
जब फूल लगा
तब, उसे
तोड़कर अपने जूड़े मे खोंसा था।
यही है,
बीसवीं सदी का सौन्दर्य बोध !

(3)

जहरीले धुए का समाजशास्त्र
हजारों की जान लेकर भी,
नही समझ सकता है मेरा देश !
इसे तो सिर्फ अर्थशास्त्र की भाषा आती है
आदमी, यहां आदमी नही, आकड़ा है
जहा रोटी नही
ग्राफ का उतार या चढ़ाव
विकास का पैमाना है ।
सत्ता के वातानुकूलित गलियारो मे
यह धुआ नही जाता
फैक्टरी के भोपू बन्द पड़े हैं
और खतरों के साइरन-सी हर कविता को
गली के कुत्तो की आवाज मानकर
झुठला दिया जाता है—
हम इक्कीसवी सदी की ओर बढ़ रहे हैं !

जब पेड़ कटता है

जब
पेड़ कटता है,
तब,
सिर्फ पेड़ ही नहीं कटता,
बहुत गहरे
कहीं, कुछ कटने लगता है।
बिम्ब, प्रतीक,
पत्तों की सरसराहट
का स्वर, लय,
फूलों की कविता
चिड़ियों का गीत—
सभी कुछ तो कटने लगता है!
धूप-छांव का खेल,
जुगाली की बात
बच्चों का—गिलहरियों का उत्पात,
छूटने लगता है।
जब पेड़ कटता है
तो कुछ नहीं बचता—
बुढ़ापे की नींद,
गुलमोहर की बातें,
बचपन की यादें—
सभी कुछ छंटने लगता है।
कौआ, ठूंठ पर
झुलसाती दोपहर का पहाड़ा
रटने लगता है।
जब पेड़ कटता है!

(3)

जहरीले धुएं का समाजशास्त्र
हजारो की जान लेकर भी,
नही समझ सकता है मेरा देश !
इसे तो सिर्फ अर्थशास्त्र की भाषा आती है
आदमी, यहा आदमी नही, आंकड़ा है
जहा रोटी नही
ग्राफ का उतार या चढाव
विकास का पैमाना है ।
सत्ता के वातानुकूलित गलियारों मे
यह धुआ नही जाता
फैक्टरी के भोंपू बन्द पडे हैं
और खतरों के साइरन-सी हर कविता को
गली के कुत्तो की आवाज मानकर
झुठला दिया जाता है—
हम इक्कीसवी सदी की ओर बढ रहे हैं !

जब पेड़ कटता है

जब
पेड़ कटता है,
तब,
सिर्फ़ पेड़ ही नहीं कटता,
बहुत गहरे
कहीं, कुछ कटने लगता है।
बिम्ब, प्रतीक,
पत्तों की सरसराहट
का स्वर, लय,
फूलों की कविता
चिड़ियों का गीत—
सभी कुछ तो बंटने लगता है !
धूप-छांव का खेल,
जुगनों की बात
बच्चों का—गिलहरियों का उत्पात,
छूटने लगता है।
जब पेड़ कटता है
तो कुछ नहीं बचता—
दुआरे की नींद,
गुलमोहर की बातें,
बचपन की यादें—
सभी कुछ छंटने लगता है।
कौआ, ठूंठ पर
झुलसाती दोपहर का पहाड़ा
रटने लगता है।
जब पेड़ कटता है !

गर्मियों की सुबह

दिन उगे ही/सूर्य
समर पथ मे,
सप्त अश्वों के/सजीले
अरुण रथ से,
छोड़ता है तीर/करता अग्नि वर्षा
सूर्य है—
दानव/देवता—क्या ?

गर्मियों की शाम

सूरज डूबने के बाद/चहचहाती चिड़िया
ऐसा लगता है/अभी सूर्योदय हुआ है/पश्चिम में !
दिन भर आग बरसाती
टीन की छत की छांव से निकलकर/आगन मे खाट बिछाये
लेटे-लेटे/अंगीठी से उठते धुए को देखना
कितना अच्छा लगता है/ रुई के सफेद गोलो से
कल्पना के बादल, कागज पर उतर आने को
भटकते से दिखाई देते हैं/पर उठकर कागज लाना भी किसे
अच्छा लगता है ?
खाट पर लेटे-लेटे/गुलमोहर के फूलों को निरखना
जो अस्त होते सूरज की लाली से दहक उठे है/और
घूंट-घूंट चाय को सुडकना/जीवन किसी शान्त झील-सा लगता है।
यही शाम तो है/जो सहन करने की शक्ति देती है
दिन भर की आग/और रात की उमस !

एक बदली बरस गई

एक बदली बरस गई आकर,
भिगो गई कुछ अन्दर, बाहर
बाहर था वह सूख गया फिर
अन्तर भीगा तो भीग गया सब।

× × ×

नयन भीग गये, हृदय भर उठा,
भूले दुःख का स्रोत झर उठा
स्मृतियों की धूलि मे धूमिल
कलुप हृदय का मुखर हो उठा।

× × ×

कुछ यादें जीवित हो आई
सावन ने जो थाह जगाई,
कुछ घाव दूब से हरे हो गये
कोकिल ने जब तान सुनाई।

गीत

हृदय की सीप में तुम अश्रु का कण-कण संजो लो,
वक्त आने पर कभी मोती बनेगा !

वेदना सह लो हृदय की हृदय ही मे
सिंधु को उफान का अवकाश ना दो
थाम लो तूफान को निज बाहुओं में
पीर को उल्लास दो, अवसाद ना दो।
दर्द का अहसास सीने से लगा लो,
दर्द बढकर गीत की पंक्ति बनेगा।

मृत्यु को रुदन न दो,
निर्माण की नव प्रेरणा दो,
यह अंधेरा मिट रहेगा
विश्वास का दीपक जला दो।
मृत्यु का हर गान निज उर मे सजा लो,
हार का दुःख जीत की शक्ति बनेगा।

हृदय की सीप में तुम अश्रु का कण-कण संजो लो
वक्त आने पर कभी मोती बनेगा !

न होने के बाद

किसी के होने या न होने से
कोई फर्क नही पडता अब,
न होने पर भी
मेरे, तुम्हारे या इन सब लोगों के
सभी कुछ होता रहेगा पूर्ववत् ।
कुछ भी नही रुकेगा
जन्म, विवाह और मृत्यु…
कुछ भी नही बदलेगा
इस पार, उस पार
दुनिया बहुत आगे बढ गई है
सम्बन्धो की सीमा-रेखाओ से ।
सिर्फ सुविधा हो गया है मनुष्य
प्रेम और विश्वास से परे
कल, न होने के बाद
अगर पूछेंगे लोग मुझे, तुम्हे
या इन सब लोगो को
तो इसलिए नही कि हम
उनके सगे थे
या कि हमारे सम्बन्ध
प्रीत मे पगे थे—
याद आयेंगे हम, तुम और सभी
मनीआर्डर की रसीदो के बहाने
जो खो जायेंगी
वक्त के साथ और फिर
शनै. शनै:
भुला दिये जायेंगे
हम, तुम और सब
न होने के बाद ।

बर्फ का संगीत

किसने बिछा दी है धरा पर श्वेत यह चादर
धवल वस्त्रों में सजे ये कौन से बालक उछलते-कूदते हैं,

श्वेत फूलों से सजा यह बाग किसका है ?
कौन से हिमकण धरा पर यों छिटककर टूटते हैं ?

चेतना के मूल तक आघात करता कौन स्वर यह
कौन मेरे गीत का हेतु बना है,
इन्द्रियों से आत्म तक की मौन यात्रा में
कौन इस सचार का सेतु बना है ?

मधुर रिमझिम, सुखद टिप-टिप का सरस गायन
बेलि-कुंजों में ध्वनित यह राग किसका है,
बसन्त के आरम्भ में सब ओर गुंजित
कौन गाता है, मधुर यह फाग किसका है ?

न होने के बाद

किसी के होने या न होने से
कोई फर्क नही पडता अब,
न होने पर भी
मेरे, तुम्हारे या इन सब लोगो के
सभी कुछ होता रहेगा पूर्ववत् ।
कुछ भी नही रुकेगा
जन्म, विवाह और मृत्यु···
कुछ भी नही बदलेगा
इस पार, उस पार
दुनिया बहुत आगे बढ गई है
सम्बन्धो की सीमा-रेखाओ से ।
सिर्फ सुविधा हो गया है मनुष्य
प्रेम और विश्वास से परे
कल, न होने के बाद
अगर पूछेंगे लोग मुझे, तुम्हे
या इन सब लोगो को
तो इसलिए नही कि हम
उनके सगे थे
या कि हमारे सम्बन्ध
प्रीत में पगे थे—
याद आयेंगे हम, तुम और सभी
मनीआर्डर की रसीदो के बहाने
जो खो जायेंगी
वक्त के साथ और फिर
शनै. शनैः
भुला दिये जायेंगे
हम, तुम और सब
न होने के बाद ।

बर्फ का संगीत

किसने बिछा दी है धरा पर श्वेत यह चादर
धवल वस्त्रों मे सजे ये कौन से बालक उछलते-कूदते है,

श्वेत फूलों से सजा यह बाग किसका है ?
कौन से हिमकण धरा पर यों छिटककर टूटते हैं ?

चेतना के मूल तक आघात करता कौन स्वर यह
कौन मेरे गीत का हेतु बना है,
इन्द्रियों से आत्म तक की मौन यात्रा मे
कौन इस सचार का सेतु बना है ?

मधुर रिमझिम, सुखद टिप-टिप का सरस गायन
वेलि-कुंजों में ध्वनित यह राग किसका है,
बसन्त के आरम्भ में सब ओर गुजित
कौन गाता है, मधुर यह फाग किसका है ?

बेन्जामिन मोलोइस जिन्दा है

कल,
अंधेरे कुएं में
कैद कर दिया गया
रोशनी का एक और चिराग।
अंधेरे के अस्तित्व को
चुनौती देती हर लौ को
बुझाया गया है इसी तरह।
पर हर बार
रोशनी पहले से कही ज्यादा खिल उठी है,
और अंधेरा मुर्झाने लगा है।
तुम्हारे खून की गंध
जहा-जहा बिखरी है, कवि
वहा मनहूस अंधेरे की जमीन पर
रोशनी के चिरागो की फसल उग गई है।
और जिस अंधेरे कुए मे
दफना दिये गये हो तुम,
दुनिया की निगाहों से दूर,
उसी कुए से मैंने
उषा की पहली किरण के साथ
उड़ते देखा है
एक श्वेत कपोत—कहते हुए—
"बेन्जामिन मोलोइस जिन्दा है !"

बेन्जामिन मोलोइस, दक्षिण अफ्रीका के युवा कवि, जिन्हें आदमी और आदमी की बराबरी के हक में कविताएं लिखने पर 23 वर्ष की आयु में 18 अक्टूबर, 1985 को फासी पर चढ़ा दिया गया। इन्सानियत के हक की लड़ाई मे सूली पर चढाये गये एक और मसीहा को सलाम।

बदलते अर्थ

मुहावरे अर्थ खोने लगते हैं,
ध्वनियां महत्वपूर्ण हैं, अर्थ न्यून।
कितनी तेजी से बदल गया है सब कुछ
कुछ पेड़ पतझड में मुस्कराने लगे हैं
अपने ही भाई को
क्षण-क्षण निर्वस्त्र होते देख !
रेत के स्वभाव का हो गया है जल
बहना तो जानता ही नही
बस सोख लेना चाहता है
अपने ही अन्दर सारा रस।
दुःख की धूप से भाप बनकर छाह नही देता
क्रोध से लाल होकर झुलसा देता है
सम्बन्धों की पगतलियां !
चोट लगने पर कराहता है आदमी
इसलिए नही कि दर्द असह्य हो गया है
महज इसलिए कि कराहना
चोट लगने की सार्वजनिक घोषणा है।
और तब सवेदनाओं के स्वर
गूंजने लगते है आस-पास
युद्धाभ्यास के साइरन की तरह।
चाहे युद्ध न हुआ हो
साइरन बजा है तो ब्लैक आउट होना ही चाहिए,
और इसलिए हम ओढ़ लेते हैं,
शोक की काली चादर,
चिपका देते हैं बद होठों पर काले कागज
कि रोशनदानो से रोशनी की कोई किरण
फूट न पड़े,
और ढह न जाये अंधेरे का शहर।

सफ़र से पूर्व

हमे बहुत लम्बी यात्रा पर जाना है,
कौन जाने
कितनी दूर है वह स्वर्ण कलश,
वह रक्तिम ध्वज !
जिस अंधेरे जंगल से
गुजरती है यह डगर
हिंस्र भेड़ियों का शासन है वहा,
जो ओढे हुए हैं सफेद कोमल मेमनो की खाल !
हमे बचना होगा इनसे
और बताना होगा
खूनी पंजों की इस साजिश का राज
उन्हे भी
जो मोहित हैं इसके मखमली स्पर्श से।
कौन जाने
सख्या पे आधारित यह
जंगल कानून
ठहरा दे हमें ही खूनी ?
पर लडना होगा हमें यह संग्राम भी।
भेडिया अपनी औकात बता दे
हो सकता है,
उसके लिए हमें भी पैने करने पड़ें
अपने नाखून, अपने दांत।
सफर के प्रारम्भ की यह पहली शर्त है—
क्या अब भी चलोगे तुम मेरे साथ ?

सम्बन्ध

हर लड़ाई में
अकेला क्यों हो जाता है आदमी ?
और भी कठिन हो जाता है
लड़ना, जब
अपने ही साथी
करने लगते हैं समझौते की बात।
तब लगता है
सम्बन्धों का मतलब ढूंढ़ना
सूर्य की परछाईं ढूंढने जैसा है।
सूर्य भी तो लड़ता है
अकेला ही
अंधेरे के खिलाफ
होने को तो उसके भी हैं बन्धु
असंख्य तारागण !
पर अस्तित्व की लड़ाई
हर बार होती है
अकेले की लड़ाई।

एक और लड़ाई

एक लडाई है
जो हमे
घुटनो चलते
सिखाई गई थी ।
जिसने हमें
कतार में चलना सिखाया
नजरें झुकाकर
सभ्य भाषा मे
(भाषा भी सभ्य या असभ्य होती है !)
"यस सर" कहना सिखाया ।
एक और लडाई है
जो हम खुद
वक्त की कवायद के साथ
कदम-दर-कदम सीख रहे हैं ।
हमारी निगाहें
उनकी आंखो मे पैठ गई हैं ।
जो हमे
मशाल उठाते देखकर
काप उठे हैं,
जो हमें
जिन्दा लाशें बनाना चाहते हैं
जिनका कोई वजूद न हो ।
कि उनके सिर्फ हाथ उठें
समर्थन में
सिर नही ।
एक लडाई और है
जो हम शुरू करने जा रहे हैं—
हमारी आंखो का रग लाल हो चुका है ।

मोनोलॉग-1

दिन भर
एक आश्रय से दूसरे तक
निष्परिणाम घूम चुकने
के बाद/अपनी पुरानी आदत के मुताबिक
जब डायरी लिखने लगता हू
तो इच्छा होती है
मैं सारा वर्ण क्रम भूल जाऊं
भाषा का भी न रहे आश्रय
भटकता रहू स्वयं की तलाश में।
कविता भी दे दे दगा
विश्वासों की तरह, और विचार
अपने आपको आईने मे
देखने से क्या मिलेगा ?
फूल देखने का विचार है ?
पर तुमने फूल बोए ही कहां इस वर्ष ?
तुमने सोचा होगा
तुम्हें कोई बुला रहा है,
जाओ।
तुम्हारी आखें नम क्यों हैं ?
नहो।
प्याज काटते रहे थे न अभी !
अच्छा, सो रहूं।
नही।
रेडियो चला दो—सोते वक्त शोर होना चाहिए/
वर्ना सोचना पड़ता है/और सोचना ? तुम जानते ही हो

पलंग पर लेटे हुए

पलग पर लेटना
और लेटे रहना
सुकून की चादर ओढ़
बहुत बडा सौभाग्य है न !
पर यू ही लेटे-लेटे
जब गुजर जाए एक अर्सा
जमीन पर रखते ही
कापने लगे पैर
आखें लाल हो जलने लगे
और सीने मे ढेर-सा कुछ
घुटने लगे
तब पलग कारागृह हो जाता है।
एक-एक घाव
दोहराने लगता है अपने आपको,
घाव जो अपनों ने दिए
पीठ पीछे,
घाव जो सितारो को निहारते
ठोकर लग जाने पर हुए,
घाव जो दूसरों को लपटो से
बचाते हुए—
सबके सब फिर रिसने लगते हैं
और विस्मृति की दवा तो चुक गई है कब से
पलंग पर लेटे-लेटे
तब
शव-यात्रा के स्वप्न देखने लगता है आदमी
अपनी अन्तिम यात्रा के स्वप्न

बरसात का एक दिन

दिन उगा
जब
रात ने घूघट हटाया,
पैरो मे
रिमझिम घुघरू बाधे
सद्य-स्नाता ऊषा ने आचल फैलाया।
दिन भर
दिनकर किरणो के साथ नाचा
............गाया,
बादलो से खेला लुका-छिपी,
और जाते-जाते
रजनी से ठिठोली कर गया,
बाध गया
सध्या के पैरो मे घुघरू—
रिमझिम—रिमझिम।

साथी आज तुम्हें है जाना

यह जीवन का सत्य निरन्तर
स्वागत विदा मे कोई न अंतर

जगती के इस आश्रमस्थल मे, सदा लगा है आना-जाना,
साथी, आज तुम्हें है जाना !

यह नियम को पर इससे क्या
दर्द नही हमको कब होता

क्या विदा के क्षण नयन भूल पाएंगे अश्रु बहाना,
साथी, आज तुम्हें है जाना !

साथी, आज विदा के क्षण में
हूक उठी है अतरतम मे

देख भविष्यत् के सपनो को, स्मृतियो के मत दीप बुझाना,
साथी, आज तुम्हे है जाना !

अपने आपसे

सड़क पर पड़े गड्ढों,
से बेखबर,
बिजली के टूटे तारो से परे
आसमान की रंगीनियों को निहारने का
वक्त अब रहा नही, मित्र !
बगल से तीर-सी सनसनाती
गुजरती कारो का काफिला
कहां और क्यों जा रहा है ?
तुम फिर मार्क्स की बात करोगे—
देखो,
दो फटेहाल बच्चे
कितने लालच से देख रहे हैं
तुम्हारे थैले मे रखे केले के फल—
और इसी बीच
उनकी टोकरी से ले गया है
सूखी रोटी का अधकुतरा टुकडा
एक पूजीवादी कुत्ता !
तुम्हें चिन्ता है कि आज चक्की बन्द है
मोहल्ले की
एक फर्लांग आगे जाना पड़ेगा तुम्हे,
और वे दाने-दाने को मोहताज हैं—तुम
सपनों के मसीहा हो,
देखते हो मसीहा के स्वप्न !

प्रस्ताव पारित कर देने मात्र से
नहीं हो जाता
समस्याओं का अन्त ।
समर्पण से पूर्व, अर्जुन,
गांडीव की एक परीक्षा और सही !

चिड़िया की कविता

कितना अच्छा लगता है सोचना,
"काश मैं चिड़िया होता !"
चिड़िया होने का स्वप्न
ऊपर उठने की आदमी की
आदिम महत्वाकांक्षा ही तो है।

आदमी के लिए
चिड़िया एक स्वप्न है—
चिड़िया के पंख
चिड़िया की चोंच
चिड़िया की आवाज।

चिड़िया आदमी के लिए
भोर का मधुर संगीत है
पलक झपकते ही
फुर्र हो जाने की असीमित गति है
रंग-बिरंगे, लम्बे, पतले
चौड़े, तीखे
आकारों का अजायबघर है।

चिड़िया आदमी की स्वप्निल आकांक्षा है
फंतासी है।
पर चिड़िया के जीवन की
मजबूरियां नहीं जानता आदमी
वह नहीं जानता कि
हर बड़ी चिड़िया मारती है
छोटी चिड़िया को
(आदमी की तरह)
धूर्त चिड़िया के अंडे सेने पड़ते हैं

यही कह रही थी, "तुम भी क्या पाजी हो,
कैसे नासमझ हो ?
चिड़िया की कविता लिखना चाहते हो ?
चिड़िया का दर्द सिर्फ एक चिड़िया ही
समझ सकती है
तुम तो निरे आदमी हो !"

"एक साला वो हरामजादा बिरजू,
आठ किताबें पढ़कर
पुलीस मे का हो गया, माला
राड लेकर भाग गया और मा-बाप की तरफ
देखा भी नही," किसनी बके जा रही है
किसनू का कप हाथ से छूटकर
गिर जाता है
वह उठाता भी नही, बस, देखता है।
चा अलाव मे ढुल जाती है,
बीड़ी भी बुझ जाती है,
अलाव से धुआं उठता है,
हवा तीर-सी लगने लगती है,
दरवाजा खड़खड़ाता है—
"अबकी भी दाहू पड़ जाएगा।"
किसनू बडबड़ाता है।

"एक साला वो हरामजादा बिरजू,
आठ किताबें पढ़कर
पुलीस मे का हो गया, साला
राड लेकर भाग गया और मा-बाप की तरफ
देखा भी नही," किसनी बके जा रही है
किसनू का कप हाथ से छूटकर
गिर जाता है
वह उठाता भी नही, बस, देखता है।
चा अलाव मे ढुल जाती है,
बीड़ी भी बुझ जाती है,
अलाव से धुआ उठता है,
हवा तीर-सी लगने लगती है,
दरवाजा खड़खडाता है—
"अबकी भी दाह पड़ जाएगा।"
किसनू बड़बड़ाता है।

"एक साला वो हरामजादा बिरजू,
आठ किताबें पढ़कर
पुलीस में का हो गया, साला
राड लेकर भाग गया और मा-बाप की तरफ
देखा भी नही," किसनो बके जा रही है
किसनू का कप हाथ से छूटकर
गिर जाता है
वह उठाता भी नही, बस, देखता है।
चा अलाव में ढुल जाती है,
बीड़ी भी बुझ जाती है,
अलाव से धुआ उठता है,
हवा तीर-सी लगने लगती है,
दरवाजा खडखड़ाता है—
"अबकी भी दाह पड जाएगा।"
किसनू बड़बड़ाता है।

प्यार का मौसम

प्यार करने का
कोई मौसम होता है क्या ?
लोग सावन की बात करते हैं
कुछ बसन्त की—
पर
जब से भीगने लगी हैं मसें
हर सावन
आसमान को ताकते ही बीता है
दिन भर गर्म चिपचिपी
कमीज से उठती बास
मिट्टी की सौंधी गंध के
स्वप्न को भी गंदला करती रही।
पहले पोखर सूखे
फिर नल
और फिर आखें !
बसन्त मे उड़ रही है धूल।
पीले सूखे कनेर के पत्ते
टिफिन बाक्स से फेंके कागज
और बटी का तार पर सूखता रूमाल
गोल-गोल घूमती
धूल भरी हवा मे बेतरतीब !
प्रेमिका कैफे पर
इंतजार नही करती, अब
बड़े-बड़े
रंगीन कांच के चश्मे से आंखें छिपाए
नथुनो पर रखे रूमाल
स्कार्फ से लहराते बालो को बांधे
बस की कतार मे खड़ी है—

एक शब्द—निःशब्द

कल्पना के बोझ को कब तक
ढोते रहे,
बोते रहे
कब तक
जीवन के मरुथल मे
सपनों की फसल !

एक शब्द—निःशब्द

कल्पना के बोझ को कब तक
ढोते रहें,
बोते रहें
कब तक
जीवन के मरुथल मे
सपनो की फसल !

बेचारा सूर्य

सूरज को
उगते देख, कई लोग
जोड़ देते हैं हाथ
कि हे सूर्य देवता, हे प्रभो
तुम उगो, दहो
बस
अपने लिए तो
मुट्ठी भर प्रकाश का स्रोत बने रहो,
एक आग्रह है, याचना भी।
पर स्वीकार नहीं
जलना, तपना
खुद प्रकाशपुंज बनना।
दीनता का प्रदर्शन यह
कि सूर्य, तुम ही
बिखेरते रहो प्रकाश—
हम कहां इस काबिल?
और सूर्य,
इस झूठी प्रशंसा में छिपी
पलायनवृत्ति से बेखबर
जलता है पल-पल
बेचारा, मूर्ख सूर्य!

बेचारा सूर्य

सूरज को
उगते देख, कई लोग
जोड़ देते हैं हाथ
कि हे सूर्य देवता, हे प्रभो
तुम उगो, दहो
बस
अपने लिए तो
मुट्ठी भर प्रकाश का स्रोत बने रहो,
एक आग्रह है, याचना भी।
पर स्वीकार नही
जलना, तपना
खुद प्रकाशपुंज बनना।
दीनता का प्रदर्शन यह
कि सूर्य, तुम ही
बिखेरते रहो प्रकाश—
हम कहा इस काबिल ?
और सूर्य,
इस झूठी प्रशंसा मे छिपी
पलायनवृत्ति से बेखबर
जलता है पल-पल
बेचारा, मूर्ख सूर्य !

शब्द-दंश

यह सब कुछ
कितना अकस्मात् ही हो गया,
कुछ भी तो अवसर नही था ऐसा—
एक दंश सा हृदय पर
सच !
सीधे हृदय पर
क्षण भर का भी अवकाश नही।
न सोचने का, न समझने का
विश्वासों की ऐसी अकाल मृत्यु !
क्या यही होता है हर बार
जब मुझसे सीख लोगे तुम
सब कुछ
जो ले सकते हो
तो चल दोगे किसी अजनबी से
मानो कभी देखा ही न हो ?
और आभार, करुणा अथवा
सान्त्वना की जगह,
पहले से रिक्त,
जग-उपहास का लक्ष्य बनने के लिए
छोड दोगे तुम ?
क्या तुम भी ऐसा ही करोगे वासुदेव ?
तुम पर आक्षेप नही है यह
पर ऐसा हुआ है
एकाधिक बार मेरे साथ
इसीलिए आशंकित हू।
तुम तो मेरे सारथी हो,
तुम पर मेरे अटूट विश्वास का
मोह-भग तो नही होगा न प्रभो ?

शब्द-दंश

यह सब कुछ
कितना अकस्मात् ही हो गया,
कुछ भी तो अवसर नही था ऐसा—
एक दश सा हृदय पर
सच !
सीधे हृदय पर
क्षण भर का भी अवकाश नही।
न सोचने का, न समझने का
विश्वासो की ऐसी अकाल मृत्यु !
क्या यही होता है हर बार
जब मुझमे सीख लोगे तुम
सब कुछ
जो ले सकते हो
तो चल दोगे किसी अजनबी मे
मानो कभी देखा ही न हो ?
और आभार, करुणा अथवा
सात्वना की जगह,
पहले से रिक्त,
जग-उपहास का लक्ष्य बनने के लिए
छोड दोगे तुम ?
क्या तुम भी ऐसा ही करोगे वासुदेव ?
तुम पर आक्षेप नही है यह
पर ऐसा हुआ है
एकाधिक बार मेरे साथ
इसीलिए आशकित हू।
तुम तो मेरे सारथी हो,
तुम पर मेरे अटूट विश्वास का
मोह-भग तो नही होगा न प्रभो ?

मुझे आत्म-मुग्ध, पराश्रित और
परावलंबी सम्बोधनों से
आहत करते स्वरों का
कोई उत्तर नहीं है मेरे पास।
पर कभी तो तुम आओगे न
और हर लोगे
यह पीड़ा, यह संत्रास
जो दे गए हैं मुझे
इस युग के शब्द-दंश ?

इंतजार/तलाश

कल
रात भर की ओस
से नहाकर
उगने वाला सूर्य,
तुम्हे
एक चमकीला सवेरा देगा
और,
मेरे लिए
भूली हुई कविताओ सा अतीत ।
तुम युग लहरो पर
सीना फुलाए
बढते रहोगे,
मैं
तट पर आती फेनिल लहरो में
अपनी प्यास
ढूंढता रहूंगा ।
जाओ,
तुम जागते हुए
कल के सूरज का इंतजार करो
और
मुझे स्वप्नो मे
अपनी मंदाकिनी तलाशने दो।

नदी अपने बारे में नहीं बोलती

नदी के बारे में
क्या जानते हो तुम ?
बहते हुए पानी का
सिकुड़ता-फैलता मौसमी सैलाब,
या कुछ और
इससे गहरा, इससे विस्तृत अर्थ ?
व्यर्थ है
पूछना नदी से
उसके होने का अर्थ
नदी अपने बारे मे कुछ नही बोलती ।

वह जब भी बोलती है
पहाड़ों की, हवा की, पेड-पौधों की
भाषा बोलती है ।
बडबोले आदमी की तरह
उछालती नही फिरती
शब्दों की बाजीगरी गेंदें
हर शब्द निकालने से पहले
उसे तोलती है
नदी अपने बारे मे कुछ नही बोलती ।

धरती के सीने पर लगे
इन्सानी घावों को भरती
भूखी चट्टानो की पीठ सहलाती
नीरव वन-उपवन मे
मधुर रस घोलती है
नदी अपने बारे में कुछ नही बोलती ।

दूर होते हुए भी दूर नही होती है नदी

बस एक बार
मनुष्य जा आए उसके तट
खोले अपना अन्तर-पट,
लौट-लौट आती है
स्वप्नो मे, जागृति मे
दुखते-तपते मन सहलाती डोलती है।
नदी अपने बारे मे कुछ नही बोलती।

बिफरती है जब वह
फुफकारती सी,
तोड़ने लगती है तटबंध
बस्तियां मिटाती है,
तब क्या नदी नही होती वह ?
बांध दिए मनुष्य ने बंधन जो
नदी उसे अपनी ताकत से खोलती है,
कई बार जब हो जाती है अति
नदी मनुष्य से मनुष्य की भाषा मे बोलती है।
अपने बारे मे नही बोलती है स्वयं नदी
उसके स्वर मे सदी बोलती है।

नदी-2

पिंडलियों तक बहते पानी मे
घुटनो के बल बैठ
सिर डुबाने का प्रयास करते
किसी भी सुलभ नाली या नाले को
नदी मान लेना
आत्मवंचना नही तो क्या है ?
नदी के बीच से
नदी को मत देखो
देखना है पूरा सच तो
किसी ऊंचे शिखर पर पहुंचो,
तब देखो !
नदी को देखना है तो
वहां से देखो
जहा वह नदी नही रहती ।
देखो, जीवन के पार
मृत्यु के महासागर से
आत्मानुरागी अहंकार के तटबध
कितने हास्यास्पद, कितने बौने लगते है
कितना बचकाना लगता है
दो चट्टानो के बीच
लेट या बैठकर
प्रवाह को रोकने का प्रयास,
पर उगते ही चीटी के
परिन्दे को टोकने का प्रयास !
यहां से देखो जीवन को
उसकी गति को समझो
उसके अन्त को जानो
तब स्वतः ही

सब कुछ समझ जाओगे तुम।
नदी के तट पर पड़े
चिकने-चमकीले पत्थरों का मोह
कितना निरर्थक है,
कितना निरर्थक है रेत पर
उसी भ्रम को बार-बार लिखना
जो तुम्हें सत्य लगता है
अगर सच जानना है
नदी को नदी से परे हटकर देखो।

अहसास

कुछ ऐसा है,
इन वर्षों में,
उगने से ढलने तक
सूरज प्यारा सा लगता है।
इन्द्रधनुषी रंगों से
रंग देता है,
मन की कोरी चादर।
कैक्टस पलाश हो जाते हैं
किरणों की सुनहरी छुअन से,
मोती से ओस कणों से
भर जाता है
धरती का फैला आंचल।
चमकीले रंगों से भरकर
नीले आकाश को,
जब निहारता है तलैया मे
अपने ही चित्र को,
और, फिर शर्म से लाल
चेहरा लिये,
खो जाता है
पश्चिम की पहाड़ियों मे,
तब, कुछ क्षण
जी लेने का अहसास
और गहरा हो जाता है।
आसमां के चटख रंगों मे
खो जाता है,
जीवन का धुंधलापन।

संसद से मसनद तक

सविधान से ससद,
और संसद से मसनद तक
मनचाहे उसूलो को ढालने की
एक नयी 'लोकतन्त्रीय' पद्धति
ईजाद की है तुमने।
अंधेरे कुंओ मे कैद कर दिये हैं
रोशनी के सूरज,
मशालो को तब्दील कर दिया है
अपनी आरती के दीयो में।
सिर्फ भागलपुर ही नही
आखें और फोड़ी जाती रही हैं
देश भर मे,
और बागपत के बाद भी बलात्कार होते रहे है।
पर, विरोध करने वाली
हर आवाज को जकड़ दिया है तुमने
बेडियों मे, या
चद चांदी के टुकड़ों मे खरीद लिया है।
आखिर विरोध कैसे हो ?
तुमने हर दो जोडी हाथो को बना लिया है
बंधुआ मजदूर,
अपनी प्रशसा में ताली बजाने के लिए।

धूप-सा मन खिल उठा है

ज्योत्सना सी आस लेकर
चाद आगन मे उगा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
बाल अरुण की अरुणिमा से
गगन रक्तिम हो उठा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
स्वप्न का आगोश ही अब
सत्य का आश्रय बना है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
सप्त अश्वों से सुसज्जित
सूर्य का रथ चल पड़ा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
कर्म जीवन, कर्म ही गति
कर्म जीवन की प्रभा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
नभ, धरा करने प्रकाशित
सूर्य का अतस् जला है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
त्याग जीवन धर्म, मानव
धर्म-ध्वज फहरा उठा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
दिवस को जीवन समर्पित
कर प्रभाकर ढल चुका है।
धूप-सा मन खिल उठा है।
जग अधेरे को मिटाने
काव्य-दीपक जल उठा है।
धूप-सा मन खिल उठा है।

अकेलापन : पांच चित्र

(1)

"मुझे पसन्द है अकेलापन
कहा था तुमने,
मैंने भी यही कहा था
वर्षों तक,
जब तुम साथ थे
पर मैंने
नही सोचा था कभी
अकेलेपन मे मेरे
तुम नही होगे मेरे साथ।

(2)

तुमने मुझे
बिल्कुल अकेला कर दिया है, मित्र
ढूढता हूं मैं आश्रय
नितान्त अपरिचितो के बीच अब
बचता हूं उनसे
जो पूछेंगे—रोककर तुम्हारे बारे में मुझसे
हम सब—तुम्हारे मित्र, सैलाबों मे
डूबते हुए
चुरा रहे हैं एक-दूसरे से नजर
मिलेंगे तो तुम्हारे बारे मे ही होगी बात—
फिर कौन किसे चुप कराएगा, ढाढ़स बंधाएगा ?

(3)

समय फिसल रहा है
रेत-कणों-सा

चिड़िया के प्रति

चिडिया को
लाख उड़ाए आदमी
हुश-हुशाए
फिर भी न चले बस
तो मार गिराए
कितना ही अकडे
अपनी श्रेष्ठता की
डींगें हांके
झूठा बडप्पन जताए
फिर भी मूर्ख आदमी
क्या कभी समझ पाएगा
जितनी हेठी से वह
सिर उठाए, सीना ताने खडा है
चिड़िया का पंख
उसकी मूर्खता पर
मंद-मंद मुस्कराते
उसके ही सिर पर
मुकुट मे कलंगी बन जडा है।

चमगादडों की चीत्कार से
क्या तेरा भी दु ख जुड़ा है ?
फिर भी किसी से कुछ नही कहता
पहाड तो बस अचल-अटल
साधनारत वाल्मीकि-सा
निर्लिप्त खडा है
आदमी कितने ही शिखरों पर
फहरा ले अपनी विजय पताका
पहाड फिर भी आदमी से बडा है।
आदमी के पास पहाड़ को देने के लिए
बारूदी सुरगों के सिवा क्या है ?
और पहाड़ अपने सीने, अपने बाजुओ में
जो खजाना लिये है
उसे कुतर-कुतर कर ही
आदमी 'विकास' की
ये सीढियां चढा है।

परिवर्तन के बीच

पिछले कुछ वर्षों से
मैं एक परिवर्तन देख रहा हूं।

हमारे घर के बीच
एक शहर उग आया है।

मेरे घर के पिछवाड़े की फुलवारी
सिमट आयी है
'टैरेस' पर रखे चन्द गमलों में।

लाल, पीले, नीले फूल
कैक्टस मे बदल गए हैं।

एक कमरे से दूसरे के बीच फासले
मीलों लम्बे हो गए हैं,
होली और दिवाली तक
हर कमरे मे अलग दिन मनाई जाती है।

सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच
दूरी को पाटने की प्रक्रिया,
पक्ष और प्रतिपक्ष के नारों के बीच खोने लगी है।

खून में डूबा पूर्व से उगता सूरज,
और तपी हुई रेत सी संध्या, हर रोज
मेरे घर की देहलीज पर खून उड़ेल जाते हैं।

परिवर्तन की आग मे
झुलसते हुए इस घर को
हम सब घर फूंककर तमाशा देखने वालों
की तरह देख रहे हैं,
और यह मानने को भी तैयार नहीं

कि जो कुछ जल रहा है
वह हमारा अपना है, सगा है।

हम सब खुश हैं कि
हमने तैंतीस बरस पुरानी
एक किताब को बचा लिया है।

सपने देखने की सज़ा

मैं जानता था
ऐसा ही होगा एक दिन
गर्म सलाखों से
बींध दी जाएगी मेरी
और मेरे जैसे अन्य लोगों की
कोमल पलकें—
सपने देखने की कीमत
चुकानी पड़ेगी सभी को।

× × ×

अफीम के खेत में
अपराध है जागना भी
जागने पर दीख जाती है
गुलाबी और सफेद रंगों की
काली असलियत !
प्रगाढ़ निद्रा ही है अन्तिम सत्य
धर्म !

× × ×

अंधों के देश में
राजा नहीं होता अब
एक आंख वाला
बीमार या कातिल होता है
जिसका इलाज है अन्धापन !

× × ×

चाहने पर भी नहीं मिलती मृत्यु
जीवित रहने पर पाबन्दी है
सो जाओ
पर सपने मत देखो

मोहल्ले वालों की नाराजगी
कौन झेलेगा ?

× × ×

कुछ भी नहीं बिगड़ता है
अंधेरे का
समय के साथ, बस
चुक जाता है
दीए का तेल !

× × ×

कोई मेरे सपनों की
हत्या कर देगा
घात लगाकर
बैठे हैं अंधियाए लोग
मैं रात-रात भर
जागता हूं
सपनों की चौकसी मे !

× × ×

अभिमन्यु के संहार के बाद
वे खुश हैं
दावतें होंगी कल वहां
नशे में डूबे ये लोग
नहीं जानते
जन्म लेने वाला है अभिमन्यु का पुत्र
जो तोड़ना जानता है
सारे चक्रव्यूह !

× × ×

युद्ध में कोई नही जीतता
न कोई हारता है,
सेनानायकों का दम्भ होता है युद्ध
यों तो कुछ अनश्वर नहीं है
पर टुकड़े-टुकड़/मरती है

युद्ध जारी है

युद्ध जारी है हर ओर
बाहर-भीतर
कोई नही जानता इसका अन्त
ओर-छोर
बस प्रहार ही प्रहार
शोर ही शोर !
हथियार चाहे बम हो
या शब्द
युद्ध क्षेत्र राष्ट्र हों
या घर
दाव पर निष्ठा हो
या प्रतिष्ठा
चोट हर बार लक्ष्य पर ही हो
जरूरी नही
मारे जाते हैं हर युद्ध मे
बकरियां, खरगोश और कबूतर
(जिनकी गिनती नहीं होती
शहीदों मे)
युद्ध मे सब कुछ जायज है ।

पेड़ कटते रहे सघन लोगों,
रेत का घर हुए चमन लोगों।

प्यास सरेआम हो गई नीलाम
छांव का आसरा कफ़न लोगों।

वोट से आदमी नहीं ज्यादा
यह सियासत का है चलन लोगों।

क्या ये गंगो-जमन की भूमि है,
क्या यही है मेरा वतन लोगों?



कत्ल करवा के उन्हें तसल्लियां दे रहे हैं लोग
दरिया-ए-खूं में सियासत की नाव खे रहे हैं लोग।

उजड़ी हैं बस्तियां वहां जिस आग से उसे
हुकूमत की चाह में खुद हवा दे रहे हैं लोग।

नारों से अमन होता तो ये दुनिया चमन होती
झूठे बयानों का धुआं दे रहे हैं लोग।

मजहब और जात मे तो कब से थे बांटते
अब औरत को मर्द से भी जुदा कर रहे हैं लोग।

अब भी समझ जाओ इन उजली टोपियों का सच
वोटों की भीख मागने फिर आ रहे हैं लोग।



देखो, रोको, गया नहीं होगा,
वक्त इतना खफा नहीं होगा।

कल शाम कुछ कह दिया था मैंने,
रूठा होगा, उठा नहीं होगा।

घर जला दिया रोशनी के लिए,
रोटी के लिए कुछ रहा नहीं होगा।

क्यों पूछते हो राह शायर के घर की,
न घर होगा, न घर का रास्ता कहीं होगा।

[]

झीलों की छाव मे जलता हुआ शहर,
पानी की एक बूंद को तरसता हुआ शहर।

हर एक आंख मे जमाने की प्यास है,
पानी की आस मे झुलसता हुआ शहर।

इन्सान को इन्सान भी रहने न दे यहां,
हिंदू औ मुसलमां मे बदलता हुआ शहर।

मजहब के नाम पर लड़ो न मेरे साथियों,
सब मिल के बुझाओ, ये है जलता हुआ शहर।



शाम होती है, सहर होती है,
जिन्दगी यूं ही बसर होती है।

कुछ अच्छा नही लगता उनके ख्यालों के सिवा
जिन्दगी में ऐसी भी उमर होती है।

दिन गुजरते नहीं और न रात कटती है,
कई सदियों-सी अब हर एक पहर होती है।

आप ही उतर आते हैं अश्क निगाहों में,
हर घड़ी जिन्दगी की, जहर होती है।

गज़ल लिखें या कोई शेर लिखें, हर
बन्दिश उनकी यादों की नज़र होती है।



जेठ मे भी गीत सावन के लिखोगे कब तलक
कल्पना के नाम पर, मित्रों, छलोगे कब तलक?

दर्द बट पाया नही, दो मुक्तकों मे कह दिया
इस परायी आच पर पलते रहोगे कब तलक?

प्रेम, विरह, शृंगार के अब गीत किसको चाहिए
मुक्ति-स्वर, संघर्ष से बचते रहोगे कब तलक?

कस कर कलम को थाम लो तलवार की मानिन्द अब
गर राम हो वनवास से डरते रहोगे कब तलक?



शाम कुछ गर्द, कुछ धुआं-सा था
आखें सागर थीं दिल कुआं-सा था।

दिन ढला भी न था अभी पूरा,
जब चाद निकला तो बदगुमां-सा था।

घर से निकले तो कर लिया पर्दा
उनका अदाज कुछ जुदा-सा था।

कुछ हमारी ही बदनसीबी थी
उनका हर लफ्ज तो दुआ-सा था।

शेर कहने की बात आई तो
दिल का हर जख्म बेजुबां-सा था।



गजल पढ़ूं या कोई गीत पढ़ूं,
जिन्दगी, इस दौर मे क्या चीज पढ़ूं !

दिल नही है जहां से, दर्द नही
किसके अश्को में ढला गीत पढ़ूं ?

इधर गालिब है और उधर साहिर
तेरी महफिल में, मैं क्या नाचीज पढ़ूं !

रात तन्हा है, दिल भी सूना है
किसके ख्वाबो मे बसा गीत पढ़ूं !

शायरी शौक नही, आह है, मजबूरी है
अपनी मजबूरियों के किस दौर का गीत पढ़ूं !



हमको खुद पे नही होता एतबार अब
छूटे जाते हैं हमसे तो घर-बार अब।

गम के सागर में उठती है हादसों की लहर
कौन माझी है संभाले जो पतवार अब।

जर्द-सा होने लगा है खून के रिश्तों का रंग
रस्म-सा ही निभ रहा है हर इक त्योहार अब।

हम बहुत आगे बढ़े तालीम मे, तहज़ीब मे
बात जज्बातो की लगती है हमें बेकार अब।

जिन्दगी कैसे कटी पूछा न हमसे उम्र भर
पर बहुत मनुहार से छापा है इश्तहार अब।



रोशनी की जल रही कन्दील भी तो क्या हुआ
आदमी तो उसके धुएं की मार से अन्धा हुआ।

लुट गया है पुण्य का आधार ही इस देश में
यज्ञ जब पैसा बना और दान जब धन्धा हुआ।

कौन कुदरत के नजारों की कवि कविता कहे
आब गंगा का ही जब इस दौर मे गंदा हुआ।

जब-जब उम्मीदें बाध कर हम जग को आगे बढ़े
सिर कटी लाशो का एक अम्बार यह कंधा हुआ।



हर तरफ दिल को बहलाने के बहाने देखे,
तेरे शहर मे हर एक ग़ँ के खजाने देखे।

खुद को भूले हुए देखा किए रौनक इसकी
हसरतें बढती गईं ख्वाब सुहाने देखे।

ऊंची-ऊंची मंजिलें और बौना आदमी
दौर-तरक्की के ये चक्माक[1] अजाने देखे।

दरो—दीवार पे नफरत की गालियां देखीं
मुहब्बत के लिए बचे खण्डहर ये पुराने देखे।

हम इस दौर मे बेवक्त हंसी खो बैठे
इतनी कम उम्र मे हमने तो जमाने देखे।



सब कुछ भूलकर यू भीड मे चलता है आदमी
बनाकर झूठ की दुनिया किसे छलता है आदमी।

हर इक मजिल पर बढ जाता है उसका फासला खुद से
किसे पाने की हसरत है किधर चलता है आदमी।

न मिल पाई जहा, जन्नत, न ही पाया खुदा उसने
मगर इस दौड़ मे खुद से भी न मिल पाया है आदमी।

ये धोखे खूबसूरत, जश्न औ रंगीन तस्वीरें, शमा हैं
बन के परवाना जहा जलता है आदमी।



1. व्यग्य

गुलमोहर सूख गए रंग गुलाबों से उड़ा
सिलसिला आप से टूटा तो किसी से न जुड़ा।

शेर कहने लगे तो लफ्जों ने बगावत कर दी
परिन्दा-ए-अहसान दिल की शाखों से उड़ा।

मुफलिसी में नहीं यू ही कोई अपना होता
आपके मुड़ते ही कारवां-ए-तमन्ना भी मुड़ा।

वो किसी शायर का जनाज़ा ही रहा होगा
देखने जिसको खिड़कियों पे ज़माना न जुड़ा।



आओ गुजरे हुए लम्हो की कहानी कह लें,
अपने हालात को अपनी ही जुबानी कह लें।

अश्क बहते हैं तो दामन मे छिपा लें इनको,
कहने वाले कहीं अश्कों को भी पानी कह लें।

मेरे सीने में धड़कता हुआ एक और भी दिल है,
किसी दिलदार की उल्फत की निशानी कह लें।

इस हसीन दौर में मुहब्बत के कुछ शेर पढ़ें,
कुछ तुम कहो, कुछ हम अपनी जुबानी कह लें।



अब तो हालाते गुलिस्तां को संवारा जाए,
हर नयी पौध को तूफ़ा से उबारा जाए।

झरते पत्तो को बचाने से न लौटेगी बहार
नए मौसम में नया बीज लगाया जाए।

हर तरफ गर्म हवाएं हैं नशेमन वालों
कोई बादल किसी सागर से उठाया जाए।

सिर्फ कुछ हाथ बहारों के बने हैं दुश्मन
अपने सीने मे छिपे डर को भगाया जाए।

कोई कश्ती नही डूबेगी कभी तूफ़ानो मे
जोशे-आवाम को जो पतवार बनाया जाए।



आज कल ये हाल - ए - वफ़ा है लोगों
मेरी ग़ज़ल खुद मुझसे खफा है लोगो।

तोड़ के बुलबुल के पर, उदास है सैय्याद[1] !
दिल के सोदो मे दर्द नफा है लोगों !

इस शहर मे आएगा फरिश्ता कोई
उसके सीने मे कोई दर्द जगा है लोगों।

वो मेरे शहर में आते हैं, चले जाते हैं
एक बहाने का ही नाम वफ़ा है लोगों।



1. शिकारी

एक घूंट पिला के पैमाना हटा लेती है।
अजब दुनिया है ये तरसा के मज़ा लेती है।

गुले-इशरत[1] खिले भी नही गुलिस्तां में
अपने दामन में समा उनको कजा[2] लेती है।

इश्क भी हमको मिला ख्वाब की दौलत बनकर
फिक्रे मुफलिसी जिसे आंखों से चुरा लेती है।

हम उसे भूल भी जाते मगर नसीम-ए-सहर
उसकी यादो के कबूतर को बुला लेती है।

मेरे होठो की हंसी बनके गज़ल आयी थी
उनके अश्कों की वजह बनके सजा देती है।



आओ एक खुशनुमा गजल कहें
बदली को चांद का काजल कहें।

बरसे गर आंख से फिर भी उसे
अश्क नही, झरने का मीठा जल कहें।

वो आज नही चाहें तो न कहें आज
क्या फर्क पड़ता है जो वो कल कहें।

चाहे हो मेरी गजल सदियों-सी
उनके लब पे आए तो वे हर पल कहें।



1. ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, प्रशंसा आदि के फूल
2. मौत

छोटी-छोटी खुशियों से जिन्दगी भर लो
इन चिरागों से हर सिम्त रोशनी कर लो।

क्या जरूरी है असर लाए इबादत सबकी
बुत बना लो इक खुदा का और बन्दगी कर लो।

गम के सहरा में भी हैं प्यास बुझाने के सामा
आंख के आब से इंतजाम - ए - तिश्नगी कर लो।

घर - गिरस्ती के मसाइल तो न सुलझेंगे कभी
किसी हंसते हुए बच्चे से दोस्ती कर लो।

हर तरफ भीड़, शोर और पत्थर
दिल के खामोश बियाबा में शायरी कर लो।



आओ बैठो प्यार की बातें करें
इश्क के इज़हार की बातें करें।

दश्ते-सहरा से गुजर कर आए हैं
आओ अब गुलज़ार की बातें करें।

दूर फेंकें फिक्र की बासी खबर
इतवार के अखबार की बातें करें।

तल्खियों से सच की, टूटा हूं बहुत
आओ कुछ पल ख्वाब की बातें करें।

पास बैठें, चुप रहें, कुछ ना कहें
रूह के अहसास की बातें करें।



वक्त के तेवर नज़र आने लगे
दोस्त मेरे शहर से जाने लगे।

बाद मुद्दत के मिली थी इक खुशी
हंसते लगे तो अश्क भी आने लगे।

राह के पेडो तले छाया मिली
घर जो पहुंचे तो इन्सान बेगाने लगे।

सच कहा तो लोग उठकर चल दिए
खुशनुमा उनको तो अफसाने लगे।

हम तो मानो मजहबों के भूल बैठे हैं 'हबीब'
पास मस्जिद के जो पहुंचे तो वो मैखाने लगे।



अहसास जिन्दगी का नया दे गया कोई
अन्दाज़ जिन्दगी को नया दे गया कोई।

थी कब से बंद खिड़किया मेरे मकान की
फूलों की गंध ताजी हवा दे गया कोई।

होने लगे इस शहर मे सगीन हादसे
दिल ले के मेरा मुझको सज़ा दे गया कोई।

खो गए थे जिन्दगी की रहगुज़र मे हम
मंजिल का पता मुझको अभी दे गया कोई।

कुछ गीत लौट आए है यादों के देश से
कुछ और आएंगे ये ख़बर दे गया कोई।



आज हंसती हुई लगे है ग़ज़ल
कितनी अपनी सी यू लगे है ग़ज़ल।

वो चमकती हुई चादनी सी हंसी
उनकी आखों में क्यों लगे है ग़ज़ल।

इन बिखरते हुए विश्वासों मे
साथ अपनो का ज्यों लगे है ग़ज़ल।

आज खुश हैं कि लुटा दें दुनिया
माग कर देख तो सही ऐ ग़ज़ल।



आप होते तो क्या नही होता
शमा होती धुआ नही होता।

दिल के तारो से बात कर लेते
इश्क यों बेजुबा नही होता।

कुछ खुशी बाटते जमाने मे
शेर हर गमज़दा नही होता।

कोई हमको भी देखकर हंसता
कोई हमसे खफा नही होता।

आप होते तो ख्वाब सच होते
और वो सच यो बुरा नही होता।



सिर्फ अपनों के लिए ही लड़ लिये तो क्या किए,
आदमी वह है जो औरों के लिए मरे जिए।

पेट भरना तो बहुत आसान है इस दौर मे
साहसी वह है जो भूखे पेट भी हंसकर जिए।

युद्ध में आगे लड़े वह ही सिपाही तो नही
भूलते क्यों हो उन्हें जो भूख से लड़कर जिए।

दास्तां उनकी कभी जुड़ती नही इतिहास मे
शेर कहलाने के लिए जो माद मे सड़कर जिए।



कोई रोको, वो चला जाता है
मेरा सूरज है ढला जाता है।

सर्द हवाओ से बचा लो उसको
एक वही दीप जला जाता है।

वो ज़रा सा उदास होता है
सारी दुनिया को रुला जाता है।

शाख से गिरता है जो आखिरी पत्ता
उसकी हस्ती को मिटा जाता है।

मैं तो बुझता हुआ दीया हू 'हबीब'
क्यों तू मेरे साथ जला जाता है?



तन्हाईयों का साथ जब होने लगा
उम्र का अहसास तब होने लगा।

साथ छूटे, ख्वाब, उम्मीदें, भरम
वक़्त का अंदाज़ जब होने लगा।

फिर हवा ने खिड़कियों से कुछ कहा
दर्द जब अपना असर खोने लगा।

बाद मुद्दत के मिले मुझसे 'हबीब'
फ़ासला क्यों दरम्यां होने लगा?



रुकने का अभी वक़्त है कहां साथी
और भी आएंगे इम्तहां साथी।

ज़ुल्मत[1] की सियाह रात में तन्हा है सफ़र
साथ ढूंढेंगे किस-किस का कहां-कहां साथी?

बेहतर है चल पड़ें अपने ही दम से अब
बैसाखियों का भरोसा है कब, कहां साथी?

तिनके को ले के उठा है परिन्दा जो शाख से
उसकी आखों में देखा है मैंने आशियां साथी।



1. अंधेरा, तारीकी, तमं

नज़्म

आज की शाम भी तुम साथ रहो
तो बात बने,
सर्द मौसम है, हवा तीर-सी चुभ जाती है,
कांपते हाथों में ठिठुर जाती है जैसे ये कलम
तेरी नज़दीकी का अहसास रहे तो बात बने।

शेर ओ' नज़्म का आगाज भला कैसे हो
चांद भी बर्फ़ के टुकड़े-सा नज़र आता है
रात जम जाती है झीलों में सियाही बनकर,
बल्ब की रोशनी पैरों को समेटे अपने
सिकुड़ी बैठी है किंकियाते हुए टॉमी की तरह
तुम चली आओ तो उफ़क से कोई सूरज निकले !
आज की शाम तुम साथ रहो तो बात बने।

तेरे आग़ोश की गर्मी पाकर
यादों के लिहाफ़ों मे छिपी कोई नज़्म जगे
सिर उघाड़े और कातिल-सी एक अंगड़ाई ले
तेरी पलको की तरफ देख के पलकें खोले
मैं कलम ले के मना लू उसको
अपने अदाज़ मे लफ्ज़ो से सजा लू उसको
तेरे हाथो को मेरे होंठो से छूकर फिर से
इश्क के नाम पे एक नज़्म मैं कहूं तुमसे
आज की शाम तुम साथ रहो तो बात बने !

नज़्म

मुझको मालूम है
जो उम्मीद है ज़माने तेरी
कोई चाहे है
तरन्नुम-ए-मोहब्बत मुझसे
कोई ख्वाबों के महल
प्यार के नग्मे चाहे
इश्क-ओ-हुस्न के
जल्वों का तसव्वुर मांगे
पर मैं मजबूर हू, मेरे दोस्त
न ये दे पाऊंगा
मुझको माफी दो मेरे चाहने वालो
कि मुझे
अब नए दौर की आवाज़
बया करनी है
मेरे आगे जो बिछा जाता है
खूनी मंज़र
उसके सीने के लहू की
सियाही लेकर
इस नौजवां नस्ल के नाम
गज़ल कहनी है
झूठे ख्वाबों के महल
बांट रहा है सियासत वाला
मुल्क मे बो के
खूनी फसल जात-ओ-मजहब की
उसके बाजुओं को ही
काट रहा है सियासत वाला।
छीन के ख्वाब दुधमुहे उनसे

मेरे बच्चों पे सितम ढाया है उस खूनी ने
कोई खुद को नही यूं ही लगा देता आग
मेरे बच्चों को जलाया है उस खूनी ने ।
वो मेरे नाम पर ही जिन्दा है
और मेरे यकीं को ही दगा दी है उसने ।
मुझको इस दौर में कोई नाम नया-सा दे दो
कि मुझको जलते हुए
' जख्मो का दर्द पढना है
फिर जलाएंगे हसी और बहारों के चिराग
सुर्ख आंखो के समन्दर मे धधकती है जो
मुझको उस आग मे सुलगना है ।
भूख से, प्यास से या नफरत से
मर गया जो उसका
फातिहा भी मुझ अकेले को ही पढना है ।
मुझसे उम्मीद है इंसानियत की भी
फिर से इंसान को बदलना है
फिर से उग आए प्यार का सूरज
इस कदर काम कोई करना है ।
फिर मिलें हाथ दोस्ताने में
भूल जाएं मुल्ला औ बिरहमन के फसाद
मुझको मोहलत दो मेरे अज़ीज़ोरफ़ीक
कि अब मजलिस मे
दिल नही लगता, यूं भी ।
जलते चौराहो पे
कुछ लोग खडे है, देखो
फर्ज के वास्ते जो हुए नजरे-आतिश
उनकी मांओ के
कलेजे की जलन को देखो ।
मैं तो चलता हूं
कि सीने से लगा लूं उनको
तुम भी चाहो तो उठा लो परचम
ये वक्त नही है
बन्द कमरो मे खामोश बैठने का, सुनो

फिर कभी बात/मोहब्बत की करेंगे तुमसे
फिर हुस्न के जलवों की
गजल लिखेंगे
वक्त ने फिलहाल तो दे दी है
इन हाथो मे मशाल ।



हेमेन्द्र चण्डालिया

जन्म : 7 नवबंर 1963

पिता : श्रीमान उदयलाल जी चण्डालिया

कविता, गजल, कहानी व्यंग्य आदि विधाओं में पिछले लगभग एक दशक से सृजनरत। देश-प्रदेश की लगभग एक दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी तथा अंग्रेजी रचनाओं का प्रकाशन। आकाशवाणी उदयपुर से सन् 1985 से हिन्दी तथा अंग्रेजी में नियमित प्रसारण।

राजस्थान साहित्य अकादमी का चन्द्रदेव शर्मा प्रथम पुरस्कार तथा महाराणा मेवाड़ फाऊन्डेशन उदयपुर का साहित्य के लिए महाराणा राजसिंह पुरस्कार प्राप्त। राजस्थान पत्रिका उदयपुर में पत्रकारिता का कुछ अनुभव। "विकल्प" (हिन्दी) तथा 'स्पेक्ट्रम' (अंग्रेजी शोध पत्रिका) का सम्पादन।

सम्प्रति : राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से "सोशल रियलिज्म इन द मेजर फिक्शन ऑफ ख्वाजा अहमद अब्बास" पर शोधरत एवं राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन।

संपर्क : सी-220, प्रतापनगर, उदयपुर (राज०) 313001